ॐ श्री कृष्ण शरणम् मम ॐ
卐 सांख्ययोग नामक दूसरा अध्याय 卐

ठाकुर भिम सिंह द्वारा प्रस्तुत

श्रीमद्भगवद्गीता अमृत

श्लोकों के गूढ़ रहस्यों के साथ

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

सांख्ययोग-नामक दूसरा अध्याय

01-10	अर्जुन की अज्ञानता के विषय में श्री कृष्णार्जुन-संवाद
11-30	सांख्ययो का विषय
31-38	क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध करने की आवश्यकता का निरूपण
39-53	कर्मयोग का विषय
54-72	स्थिर बुद्धि पुरुष के लक्षण और उसकी महिमा |

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

संजय उवाचः
तं तथा कृपयाविष्टम् अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तम् इदं वाक्यम् उवाच मधुसूदनः ॥१॥

संजय बोले— इस तरह करुणा से व्याप्त, आंसू भरे, व्याकुल नेत्रों वाले, शोकयुक्त अर्जुन से भगवान कृष्ण ने कहा. (२.०१)

BG 2.1: Sanjay said: Seeing Arjun overwhelmed with pity, his mind grief-stricken, and his eyes full of tears, Shree Krishna spoke the following words.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्रीभगवानुवाचः
कुतस्त्वा कश्मलम् इदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टम् अस्वर्ग्यम् अकीर्तिकरम् अर्जुन ॥२॥

श्रीभगवान बोले— अर्जुन, इस विषम अवसर पर तुम्हें यह कायरता कैसे प्राप्त हुई? यह श्रेष्ठ मनुष्यों के आचरण के विपरीत है तथा यह न तो स्वर्ग प्राप्ति का साधन है और न कीर्ति देने वाला ही है. (२.०२)।

BG 2.2: The Supreme Lord said: My dear Arjun, how has this delusion overcome you in this hour of peril? It is not befitting an honorable person. It leads not to the higher abodes, but to disgrace.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वय्य् उपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥३॥

इसलिए हे अर्जुन, तुम कायर मत बनो. यह तुम्हें शोभा नहीं देता. हे शत्रुओं को मारने वाले अर्जुन, तुम अपने मन की इस दुर्बलता को त्यागकर युद्ध करो. (२.०३)

BG 2.3: O Parth, it does not befit you to yield to this unmanliness. Give up such petty weakness of heart and arise, O vanquisher of enemies.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अर्जुन उवाच
कथं भीष्मम् अहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हाव् अरिसूदन ॥४॥

अर्जुन बोले— हे मधुसूदन, मैं इस रणभूमि में भीष्म और द्रोण के विरुद्ध बाणों से कैसे युद्ध करूं? हे अरिसूदन, वे दोनों ही पूजनीय हैं. (२.०४)

BG 2.4: Arjun said: O Madhusudan, how can I shoot arrows in battle on men like Bheeshma and Dronacharya, who are worthy of my worship, O destroyer of enemies?

विषेस बात :

अर्जुन के दृष्टि में ये गुरुजन आज भी पूजनीय हैं यदपि ये लोग बुराई अथवा हिंसा का साथ दे रहे हैं । यह इसलिये क्योंकि पाण्डव अपनी सिक्षा और संस्कार को सदेव पालन करना अपना परम धर्म और कर्तव्य माने हैं । यह दैवी सम्पदा वाले व्यतियों का आचरण है ।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

गुरून् अहत्वा हि महानुभावान् , श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यम् अपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस् तु गुरून् इहैव, भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥५॥

इन महानुभाव गुरुजनों को मारने से अच्छा इस लोक में भिक्षा का अन्न खाना है, क्योंकि गुरुजनों को मारकर तो इस लोक में उनके रक्त से सने हुए अर्थ और कामरूपी भोगों को ही तो भोगूंगा. (२.०५),

अर्जुन के इन ज्ञान युक्त बातों से यह पता चलता है कि वह कायर नहीं पर एक धरमात्मा था । इन संसारिक वस्तुओं से उसे प्रेम नहीं था । वह तो तीनों लोकों का राज्य भी मिल जाय तो उसे ठुकराने की बात श्रीकृष्णजी से किया था ।

BG 2.5: It would be better to live in this world by begging, than to enjoy life by killing these noble elders, who are my teachers. If we kill them, the wealth and pleasures we enjoy will be tainted with blood.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

न चैतद् विद्मः कतरन् नो गरीयो, यद् वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यान् एव हत्वा न जिजीविषामस्, तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥६॥

और हम यह भी नहीं जानते कि हम लोगों के लिए (युद्ध करना या न करना, इन दोनों में) कौन-सा काम अच्छा है. अथवा यह भी नहीं जानते कि हम जीतेंगे या वे जीतेंगे. जिन्हें मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे सामने खड़े हैं. (२.०६)

BG 2.6: We do not even know which result of this war is preferable for us—conquering them or being conquered by them. Even after killing them we will not desire to live. Yet they have taken the side of the sons of Dhritarasthra, and now stand before us on the battlefield.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः, पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान् निश्चितं ब्रूहि तन् मे, शिष्यस् तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

इसलिए करुणापूर्ण और कर्तव्य पथ से भ्रमित, मैं, आपसे पूछता हूं कि मेरे लिए जो निश्चय ही कल्याणकारी हो उसे आप कृपया कहिए. मैं आपका शिष्य हूं, शरण में आये मुझको आप शिक्षा दीजिए. (२.०७)

BG 2.7: I am confused about my duty, and am besieged with anxiety and faintheartedness. I am Your disciple, and am surrendered to You. Please instruct me for certain what is best for me.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्, यच्छोकम् उच्छोषणम् इन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमाव् असपत्नम् ऋद्धं, राज्यं सुराणाम् अपि चाधिपत्यम् ॥८॥

पृथ्वी पर निष्कण्टक समृद्ध राज्य तथा देवताओं का स्वामित्व **(अर्थत देवराज ईन्द्र का भी पदवी)** प्राप्तकर भी मैं ऐसा कुछ नहीं देखता हूं, जिससे हमारे इन्द्रियों को सुखाने वाला शोक दूर हो सके. (२.०८)

BG 2.8: I can find no means of driving away this anguish that is drying up my senses. Even if I win a prosperous and unrivalled kingdom on the earth, or gain sovereignty like the celestial gods, I will be unable to dispel this grief.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

संजय उवाच :

एवम् उक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।
न योत्स्य इति गोविन्दम् उक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥९॥

संजय बोले— हे राजन्, निद्रा को जीतने वाला, अर्जुन, अन्तर्यामी श्रीकृष्ण भगवान से "मैं युद्ध नहीं करूंगा" कहकर चुप हो गया. (२.०९)

BG 2.9: Sanjay said: Having thus spoken, Gudakesh, that chastiser of enemies, addressed Hrishikesh: “Govind, I shall not fight,” and became silent.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

तम् उवाच हृषीकेशः प्रहसन्न् इव भारत ।
सेनयोर् उभयोर् मध्ये विषीदन्तम् इदं वचः ॥१०॥

हे भरतवंशी (धृतराष्ट्र) दोनों सेनाओं के बीच में उस शोकयुक्त अर्जुन को अन्तर्यामी श्रीकृष्ण हंसते हुए-से ये वचन बोले. (२.१०)

BG 2.10: O Dhritarashtra, thereafter, in the midst of both the armies, Shree Krishna smilingly spoke the following words to the grief-stricken Arjun.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ११ - **अशोच्यान अनवशोचस्त्वं, प्रजावागांश्च भाषसे ।**
गतासून गतासूंश्च, नानुशोचन्ति पण्डिता ॥

हे अर्जुन! तुम ने शोक न करने का शोक किया है और पण्डिताई की बातें कह रहे हो, परन्तु जिन के प्राण चले गये हैं, उन के लिये और जिन के प्राण नहीं गये हैं, उन के लिये पण्डित लोग शोक नहीं करते ।

The Supreme Lord said: While you speak words of wisdom, you are mourning for that which is not worthy of grief. The wise lament neither for the living nor for the dead.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयम् अतः परम् ॥१२॥

ऐसा नहीं है कि मैं किसी समय नहीं था, अथवा तुम नहीं थे या ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे. (२.१२) ।
मनुष्य का दुख इस बात की है कि वह केवल इसी जीवन के भूत बातों के सिवा और

कुछ नहीं जानता। पिछले और अगले जीवन का उसे कोई बोद नहीं। वह त्रीकालदर्शी नहीं है। ईश्वर की माया बहुत ही प्रबल है और मनुष्य का मन और इन्द्रियों के विषयों को बस में करना कोई साधारण बात नहीं है। इसलिये इस अध्याय का सार जिसे मैं अंतमें बतलाऊगा, उस पर आप सब विशेष ध्यान देना।

BG 2.12: Never was there a time when I did not exist, nor you, nor all these kings; nor in the future shall any of us cease to be.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर् धीरस् तत्र न मुह्यति ॥१३॥

जैसे इसी जीवन में जीवात्मा बाल, युवा और वृद्ध शरीर प्राप्त करता है, वैसे ही जीवात्मा मृत्यु के बाद दूसरा शरीर प्राप्त करता है. इसलिए धीर मनुष्य को मृत्यु से घबराना नहीं चाहिए. (१५.०८ भी देखें) (२.१३)।

BG 2.13: **Just as the embodied soul continuously passes from childhood to youth to old age, similarly, at the time of death, the soul passes into another body. The wise are not deluded by this.**

वशेष बातः

मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिये, प्राणी को हर उन कर्तव्य कर्मों को निशकाम भाव से कर्तव्य समझ कर करते रहना चाहिये। फिर कैसा "सोच"! कैसा "डर"! अर्थात जब भी बुलावा आ जाये, ऐसा प्राणी मृत्यु से कदाच्ति नहीं घबराता।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

मात्रास्पर्शास् तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास् तांस् तितिक्षस्व भारत ॥१४॥

हे अर्जुन, इन्द्रियों के विषयों से संयोग के कारण होने वाले सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख क्षणभंगुर और अनित्य हैं, इसलिए हे अर्जुन, तुम उसको सहन करो. (२.१४)

BG 2.14: O son of Kunti, the contact between the senses and the sense objects gives rise to fleeting perceptions of happiness and distress. These are non-permanent, and come and go like the winter and summer seasons. O descendent of Bharat, one must learn to tolerate them without being disturbed.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१५॥

हे पुरुषश्रेष्ठ, दुःख और सुख में समान भाव से रहने वाले जिस धीर मनुष्य को इन्द्रियों के विषय व्याकुल नहीं कर पाते, वह मोक्ष का अधिकारी होता है. (२.१५) ॥

BG 2.15: **O Arjun, noblest amongst men, that person who is not affected by happiness and distress, and remains steady in both, becomes eligible for liberation.**

इस कलियुग में ऐसे धीर प्रानी बहुत कम मिलते हैं और अगर मिलते भी हैं तो लाखों में शायद एक क्योंकि चौरासी लाख योनि में चार लाख किसम के मनुष्य भी हैं । इसलिये सभी मनुष्य, मनुष्य योनि को प्राप्त करने पर भी श्रेष्ट नहीं होते । अगर आप अपने आप को जानना चहते हो कि आप चार लाख मनुष्यों में कौन से स्थान पर हो, तो अपने आप को ढूँढ़ो । ढूँढते समय अपना आचण, आचार, विचार, खान पान, व्योहार, छः विकार, अहंकार, विषय वासना, संसारिक सम्बंध (तेरा मेरा) जैसे बातों पर ध्यान कर के फिर देखिये कि आप किस स्थान पर हो ।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोर् अपि दृष्टोऽन्तस् त्व् अनयोस् तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

असत् वस्तु का भाव नहीं होता है और सत् का अभाव (कमी) नहीं होता है. तत्त्वदर्शी मनुष्य (असत् और सत्) दोनों को तत्त्व से जानते हैं. (२.१६)

BG 2.16: Of the transient there is no endurance, and of the eternal there is no cessation. This has verily been observed and concluded by the seers of the Truth, after studying the nature of both.

संसार के सभी पदार्थ असत्य हैं पर परमात्मा सत्य है ॥ यह शरीर भी असत्य है क्योकि यह क्षणभंगुर और नाशवान है ॥ This body is perishable and mortal therefore it is transient (असत्य).

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अविनाशि तु तद् विद्धि येन सर्वम् इदं ततम् ।
विनाशम् अव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुम् अर्हति ॥१७॥

उस अविनाशी तत्त्व को जानो, जिससे यह सारा जगत व्याप्त है, इस अविनाशी का नाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है. (२.१७)

वह अविनाशी तत्व क्या है! - जीव आत्मा, जो परमात्मा का अंस है, जो अव्दय

है, जिस का कभी नाश नहीं होता । । यही आत्मा रुप में कण-कण में बसा हुआ है और शरीर को कपड़े की भाँती बदलते रहता है ।

BG 2.17: That which pervades the entire body, know it to be indestructible. No one can cause the destruction of the imperishable soul.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद् युध्यस्व भारत ॥१८॥

इस अविनाशी, असीम और नित्य जीवात्मा के ये सब शरीर नाशवान कहे गये हैं, इसलिए हे भरतवंशी अर्जुन, तुम युद्ध करो क्योंकि जीव आत्मा जो कि तुम हो, वह तो अमर है । (२.१८)

प्रश्नः- जो आत्मा कभी मरता नहीं तो फिर मनुष्य को प्राणियों की हत्या का पाप लगना ही नहीं चाहिये ?

उत्तर :- पाप तो पिण्ड-प्राणों का वियोग करने का लगता है, क्योंकि प्रत्येक प्राणी पिण्ड-प्राण में रहना चहता है, जीना चहता है । यद्पि महात्मा लोग जीना नहीं चहते, फिर भी उन्हें मारने का बड़ा भारी पाप लगता है, क्योंकि उन का जीना संसार-मात्र चहता है । उन के जीने से प्राणीमात्र का परम हित होता है, प्राणीमात्र को सदा रहनेवाली शान्ति मिलती है । जो वस्तुएँ प्राणियों के लिये जितनी आवश्यक होती हैं, उन का नाश करने का उतना ही अधिक पाप लगता है ।

BG 2.18: Only the material body is perishable; the embodied soul within is indestructible, immeasurable, and eternal. Therefore, fight, O descendent of Bharat.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१९॥

जो इस आत्मा को मारने वाला या मरने वाला मानते हैं, वे दोनों ही ना समझ हैं, क्योंकि आत्मा न किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जा सकता है. (कठो.उ. २.१९ में एक समानान्तर श्लोक है) (२.१९)

BG 2.19: Neither of them is in knowledge—the one who thinks the soul can slay and the one who thinks the soul can be slain. For truly, the soul neither kills nor can it be killed.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक २० - न जायते मृयते वा कदाचि,न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजोनित्य शाष्वतोऽयम पुराणो, न हन्ते हन्यमाने शरीरे ॥

यह शरीरी (आत्मा) न कभी जन्मता है और न कभी मरता है, तथा यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला नहीं है । यह जन्मरहित, नित्य-निरन्तर रहनेवाला है, शाश्वत (immortal/eternal) और अनादि है । शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता ।

The soul is neither born, nor does it ever die; nor having once existed, does it ever cease to be. The soul is without birth, it is eternal, constant, immortal, primeval and ageless. It is not destroyed or killed when the body is destroyed or slain.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनम् अजम् अव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥२१॥

हे पार्थ, जो मनुष्य आत्मा को अविनाशी, नित्य, जन्मरहित और अव्यय (जिस में कोई विकार न हो) जानता है, वह कैसे किसको मरवायेगा और कैसे किसको मारेगा? (२.२१)

BG 2.21: O Parth, how can one who knows the soul to be imperishable, eternal, unborn, and immutable kill anyone or cause anyone to kill?

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक २२ - वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य-न्यानि संयाति नवानि देही ॥

मनुष्य जैसे पुराने कपड़े को छोड़ कर दूसरे नय कपड़े धारण कर लेता है, ऐसे ही देही (आत्मा) पुराने शरीरों को छोड़कर दूसरे नये शरीर में चला जाता है ।

As a person sheds worn-out garments and wears new ones, likewise, at the time of death, the soul casts off its worn-out body and enters a new one.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक २३ - नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं कलेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

शस्त्र इस शरीरी (आत्मा) को काट नहीं सकते, अग्नि इस को जला नहीं सकती, जल इसको गीला नहीं कर सकता और वायु इस को सुखा नहीं सकती ।

Weapons cannot shred or cut the soul, nor can fire burn it. Water cannot drench or wet it, nor can the wind make it dry.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक २४ - **अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।**
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

यह शरीरी (आत्मा) काटा नहीं जा सकता, यह जलाया नहीं जा सकता, यह गीला नहीं किया जा सकता और यह सुखाया भी नहीं जा सकता । कारण कि यह नित्य रहनेवाला, सब में परिपूर्ण, अचल, स्थिर स्वभाव वाला और अनादि है ।

The soul is uncleavable (cannot be separated by cutting) unbreakable and incombustible; it can neither be made wet or dampened, nor it can be dried. It is everlasting, is in all places, unalterable, immutable (never changing), and primordial (अनादि).

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक २५ - **अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।**
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥

यह देही (आत्मा) अव्यक्त है (पत्यक्ष नहीं दीखता), यह चिन्तन का विषय नहीं है - (मन, बुद्धिादि देखने में तो नहीं आते पर चिन्तन में आते ही हैं), अर्थात् यह सभी चिन्तन के विषय हैं, परन्तु यह आत्मा चिन्तन का विषय नहीं है । यह निर्विकार कहा जाता है - अर्थात् कोई भी विकार इस में नहीं हैं । अतः इस आत्मा को ऐसा जानकर शोक नहीं करना चाहिये ।

The soul is spoken of as unmanifest (invisible), inconceivable (i.e., cannot be imagined), and unchangeable. Knowing this, you should not grieve for the body.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुम् अर्हसि ॥२६॥

हे महाबाहो, यदि तुम शरीर में रहने वाला जीवात्मा को नित्य पैदा होने वाला तथा मरने वाला भी मानो, तो भी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए; क्योंकि जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म निश्चित है. अतः जो अटल है, उसके विषय में तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए. (२.२६-२७)

BG 2.26: If, however, you think that the self is subject to constant birth and death, O mighty-armed Arjun, even then you should not grieve like this.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक २७ - **जातस्य हि ध्रवो मृत्यु, ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।**
तस्माद परिहार्ये-ऽर्थे, न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

कारण कि पैदा हुए की जरूर मृत्यु होगी और मरे हुए का जरूर जन्म होगा यह फिर मौक्ष । अतः इस जन्म-मरण रूप परिवर्तन के प्रवाह का निवारण नहीं हो सकता । अतः इस विषय में तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये ।

Death is certain for one who has been born, and rebirth is inevitable for one who has died and could not liberate himself. Therefore, you should not lament or grieve over the inevitable.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥२८॥

हे अर्जुन, सभी प्राणी जन्म से पहले अप्रकट थे और मृत्यु के बाद फिर अप्रकट हो जायेंगे, केवल (जन्म और मृत्यु के) बीच में प्रकट दीखते हैं; फिर इसमें शोक करने की क्या बात है? (२.२८)

BG 2.28: O scion of Bharat, all created beings are unmanifest before birth, manifest in life, and again unmanifest on death. So why grieve?

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिद् एनम् । आश्चर्यवद् वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनम् अन्यः शृणोति । श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

कोई इस आत्मा को आश्चर्य की तरह देखता है, कोई इसका आश्चर्य की तरह वर्णन करता है, कोई इसे आश्चर्य की तरह सुनता है और कोई इसके बारे में सुनकर भी नहीं समझ पाता है. (कठो.उ. २.07 भी देखें) (२.२९)

BG 2.29: Some see the soul as amazing, some describe it as amazing, and some hear of the soul as amazing, while others, even on hearing, cannot understand it at all.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

देही नित्यम् अवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुम् अर्हसि ॥३०॥

हे अर्जुन, सबके शरीर में रहने वाला यह आत्मा सदा अवध्य है, इसलिए किसी भी प्राणी के लिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए. (२.३०)

BG 2.30: O Arjun, the soul that dwells within the body is immortal; therefore, you should not mourn for anyone.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

स्वधर्मम् अपि चावेक्ष्य न विकम्पितुम् अर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥

और अपने स्वधर्म की दृष्टि से भी तुम्हें अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होना चाहिए, क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्मयुद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्म नहीं है. (२.३१).
यहाँ भगवान ऐसा इसलिये कह रहे हैं क्योंकि यह युद्धभूमि है और इस समय क्षत्रिय के लिये सब से बड़ा कल्याणकारी कर्म युद्ध है न कि भिक्षा मांग कर खाना ।

BG 2.31: Besides, considering your duty as a warrior, you should not waver. Indeed, for a warrior, there is no better engagement than fighting for upholding of righteousness.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारम् अपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धम् ईदृशम् ॥३२॥

हे पृथानन्दन, अपने आप प्राप्त हुआ युद्ध स्वर्ग के खुले हुए द्वार जैसा है, जो सौभाग्यशाली क्षत्रियों को ही प्राप्त होता है. (२.३२)

BG 2.32: O Parth, happy are the warriors to whom such opportunities to defend righteousness come unsought, opening for them the stairway to the celestial abodes.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ३३ - अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं, सङ्ग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च, हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥

अब अगर तू यह धर्ममय युद्ध नहीं करगा तो अपने धर्म और कीर्ति का त्याग करके पाप को प्राप्त होगा ।

If, however, you refuse to fight this **righteous war** (ethical and duty bound), abandoning your social duty and reputation, you will certainly incur sin.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ३४ - आकीर्तिं चापि भूतानि, कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादति रिच्यते

और सब प्राणी भी तेरी सदा रहनेवाली अपकीर्ति का कथन अर्थात् निन्दा करेंगे । वह अपकीर्ति सम्मानित मनुष्यों के लिये मृत्यु से भी बड़कर दुखदायी होती है (अर्थात् एक दिन में हजारों बार मरने के समान होता है ।

People will speak of you as a coward and a deserter. They will forever recount your undying infamy. For a respectable person enjoying popular esteem, such infamy is worse than death, like William Shakespeare said in Julius Caesar "**Cowards die many times before their death, the valiant never taste of death but once.**"

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

भयाद् रणाद् उपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥३५॥

महारथी लोग तुम्हें डरकर युद्ध से भागा हुआ मानेंगे और जिनके लिए तुम बहुत माननीय हो, उनकी दृष्टि से तुम नीचे गिर जाओगे. (२.३५)

BG 2.35: The great generals who hold you in high esteem will think that you fled from the battlefield out of fear, and thus will lose their respect for you.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस् तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

तुम्हारे वैरी लोग तुम्हारी सामर्थ्य की निन्दा करते हुए तुम्हारी बहुत बुराई करेंगे. तुम्हारे लिए इससे अधिक दुःखदायी और क्या होगा? (२.३६)

BG 2.36: Your enemies will defame and humiliate you with unkind words, disparaging your might. Alas, what could be more painful than that?

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्माद् उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥

युद्ध में मरकर तुम स्वर्ग जाओगे या विजयी होकर पृथ्वी का राज्य भोगोगे; इसलिए हे कौन्तेय, तुम युद्ध के लिए निश्चय करके खड़े हो जाओ. (२.३७)

BG 2.37: If you fight, you will either be slain on the battlefield and go to the

celestial abodes, or you will gain victory and enjoy the kingdom on earth. Therefore arise with determination, O son of Kunti, and be prepared to fight.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ३८ - **सुखदुःखे समे कृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ ।**
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं, पापमवाप्स्यसि ॥

जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुख को समान समझकर तू युद्ध के लिये तैयार हो जा । इस प्रकार युद्ध करने से (जो तेरा परम कर्त्वय और धर्म भी है) तू पाप को प्राप्त नहीं होगा ।

परिशिष्ट भाव :- गीता व्यवहार में परमार्थ की विलक्षण कला बताती है, जिस से मनुष्य प्रत्येक परिस्थिति में रहते हुए तथा शास्त्र विहित सब तरह का व्यवहार करते हुए भी अपना कल्याण कर सके । सिद्धि-असिधि मे सम रह कर निष्कामभाव पूर्वक कर्तव्य कर्म करना ही गीता के अनुसार व्यवहार करना है ।

Fight for the sake of duty and engage yourself in battle, treating alike happiness and distress, loss and gain, victory & defeat, pleasure and pain. Fulfilling your responsibility in this way and seeing that battle in the battlefield is your prime duty and responsibility as a Kshtriya, you will never incur any sin.

Important Point: - The Bhagvat Gita teachers the remarkable art of spiritual upliftment through one's own dealings so that a person, under all circumstances, having all kinds of dealings sanctioned by the scriptures, may attain salvation. By becoming **even** minded in success and failures, performance of one's duties without the desire of fruits, is to act according to the gospel of the Gita.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ३९ - **एषा तेऽभिहिता सांङ्ख्ये, बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।**
बुद्धया युक्तो यया पार्थ, कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥

हे पार्थ ! यह समबुद्धि तेरे लिये (पहले सांख्ययोग में कही गयी और (अब तू) इस को कर्मयोग के विषय में सुन, जिस समबुद्धि से युक्त हुआ तू कर्म बन्धन से मुक्त हो जायेगा ।

O Partha (Arjun), I have explained to you the views of Sankhya Yog, or analytic discipline of knowledge regarding the nature of the soul. Now hear the same, O Parth, as I reveal to you the views of KarmYog, the Discipline of Selfless Action or the Yog of Intellect. Equipped with this state of mind, you will be able to completely shake off the shackles of Karm i.e., you will be freed from the bondage of karma.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ४० - **नेहाभिक्रम-नाशोऽस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते ।**
स्वल्प-मप्यस्य धर्मस्य, त्रायेते महतो भयात् ।

मनुष्य लोक में इस समबुद्धिरूप धर्म के आरम्भ का नाश नहीं होता, तथा इस के अनुष्ठान का उल्टा फल भी नहीं होता, और इस का थोड़ा-सा भी अनुष्ठान जन्म-मरण रूप महान भय से रक्षा कर लेता है ।

विशेष बात - मनुष्यलोक में कर्मयौनि होने के कारण केवल मनुष्य ही इस समबुद्धि को प्राप्त करने का अधिकारी है । मनुष्य के सिवाये दूसरी सभी भोग यौनियाँ हैं ।

Working in this state of consciousness (i.e., selfless actions), there is neither loss of efforts nor any adverse result, and even a little practice of this discipline (Dharm) saves one from great danger (of birth and death).

Important Point – As a result of being the only species that is born to perform karma (actions) in this world, only human beings, are authorised to attain equanimity (as they possess a highly advanced brain power). All other species (bodies) are to enjoy worldly pains and pleasures. There is no opportunity for them to do away with attachment and aversion because pleasures can be enjoyed only by having attachment and aversion.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

व्यवसायात्मिका बुद्धिर् एकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्य् अनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

हे अर्जुन, कर्मयोगी केवल ईश्वरप्राप्ति का ही दृढ़ निश्चय करता है; परन्तु सकाम मनुष्यों की इच्छायें अनेक और अनन्त होती हैं. (२.४१)

BG 2.41: O descendent of the Kurus, the intellect of those who are on this path is resolute, and their aim is one-pointed. But the intellect of those who are irresolute is many-branched.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

याम् इमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्य् अविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यद् अस्तीति वादिनः ॥४२॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥४३॥

हे पार्थ, सकामी अविवेकीजन, जिन्हें वेद के मधुर संगीतमयी वाणी से प्रेम है, (वेद को यथार्थ रूप से नहीं समझने के कारण) ऐसा समझते हैं कि वेद में भोगों के सिवा और कुछ है ही नहीं. (२.४२)

वे कामनाओं से युक्त, स्वर्ग को ही श्रेष्ठ मानने वाले, भोग और धन को प्राप्त कराने वाली अनेक धार्मिक संस्कारों को बताते हैं, जो पुनर्जन्मरूपी कर्मफल को देने वाली होती है. (कठो.उ. २. ०५, ईशा.उ. ०९ भी देखें) (२.४३)

BG 2.42-43: Those with limited understanding, get attracted to the flowery words of the Vedas, which advocate ostentatious rituals for elevation to the celestial abodes, and presume no higher principle is described in them. They glorify only those portions of the Vedas that please their senses, and perform pompous ritualistic ceremonies for attaining high birth, opulence, sensual enjoyment, and elevation to the heavenly planets.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥४४॥

भोग और ऐश्वर्य ने जिनका चित्त हर लिया है, ऐसे व्यक्ति के अन्तःकरण में भगवत् प्राप्ति का दृढ़ निश्चय नहीं होता है और वे परमात्मा का ध्यान नहीं कर सकते हैं. (२.४४)

BG 2.44: With their minds deeply attached to worldly pleasures and their intellects bewildered by such things, they are unable to possess the resolute determination for success on the path to God.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥४५॥

हे अर्जुन, वेदों (के कर्मकाण्ड) का विषय प्रकृति के तीन गुणों से सम्बन्धित है; तुम त्रिगुणातीत, निर्द्वन्द्व, परमात्मा में स्थित, योगक्षेम न चाहने वाले और आत्मपरायण बनो. (२.४५)

BG 2.45: The Vedas deal with the three modes of material nature, O Arjun. Rise above the three modes to a state of pure spiritual consciousness. Freeing yourself from dualities, eternally fixed in Truth, and without concern for material gain and safety, be situated in the self.

विशेष बातः । यहाँ वेदों का तात्पर्य वेदों की निन्दा में नही है, प्रत्युत निष्काम भाव की महिमा में है । भगवान यहाँ निष्कामभाव की महिमा बताने के लिये ही वेदों के सकामभाव का वर्णन किये हैं, निन्दा के लिये नहीं । वेद केवल तीनों गुणों का कार्य संसार का ही वर्णन करने वाले नहीं है, उन में तो परमात्मा और उन की प्राप्ति के साधनों का वर्णन भी हुआ है । वेद जब ये निहित करते हैं कि धन उपार्जन के लिये माता लक्ष्मी की पूजा-अराधना आवश्यक है तो इस का यह अर्थ

नहीं कि मनुष्य धन उर्पाजन के मद में पागल हो जाये । खूब धन बटोरे और उस कासद उपियोग न करे । ऐसा करने से वह अपने कर्तव्यों से विमुख रह जाता है । अर्थात् वह वेद के नियमों का उलङ्घन्न करता है । धन आर्थिक कार्यों के लिये जिस से समाज का कल्याण हो सके, परियाप्त मात्रा में अर्जित करना ही वेदों का अभिप्राय है न कि लोभ के लिये ।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

ब्रह्म को तत्त्व से जानने वालों के लिए वेदों की उतनी ही आवश्यकता रहती है, जितनी कि एक महान् सरोवर के प्राप्त होनेपर एक छोटे जलाशय की. (२.४६)

BG 2.46: Whatever purpose is served by a small well of water is naturally served in all respects by a large lake. Similarly, one who realizes the Absolute Truth also fulfills the purpose of all the Vedas.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ४७ - **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।**
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा, ते सङ्गोऽस्तवकर्मणि ॥

कर्तव्य कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, फल में कभी नहीं । अतः तू कर्मफल का हेतु भी मत बन और तेरी कर्म ना करने में भी आसक्ति न हो ।

You have a right to perform your prescribed duties, but you are not entitled to the fruits of your actions. Never consider yourself to be the cause of the results of your activities, nor let your attachment be for inaction.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ४८ - **योगस्थः कुरु कर्माणि, सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।**
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा, समत्वं योग उच्यते ॥

हे धनंजय! आसक्तिका त्याग करके सिद्धि-असिद्धिमें सम होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर, क्योंकि सम्त्व ही योग कहा जाता है ।

विशेष बात -समता एक ऐसी विद्या है, जिस से मनुष्य संसार में रहता हुआ ही संसार से सर्वथा निर्लिप्त रह सकता है ।

Be steadfast in the performance of your duty, O Arjun, abandoning attachment to success and failure. Such equanimity is called Yog.

Important Point - In the state of equanimity, a man, while living in this world, detaches himself from the world, and remains untouched by virtues and sins as a lotus leaf by water.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद् धनंजय ।
बुद्धौ शरणम् अन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥४९॥

कर्मयोग से सकामकर्म अत्यन्त निकृष्ट (बुरा, inferior) है; अतः हे अर्जुन, तुम कर्मयोगी बनो, क्योंकि फल की इच्छा रखने वालों को (असफलता का भय तथा) दुःख होता है. (२.४९)

BG 2.49: Seek refuge in divine knowledge and insight, O Arjun, and discard reward-seeking actions that are certainly inferior to works performed with the intellect established in divine knowledge. Miserly are those who seek to enjoy the fruits of their works.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥५०॥

कर्मफल की आसक्ति त्यागकर कर्म करने वाला निष्काम कर्मयोगी इसी जीवन में पाप और पुण्य से मुक्त हो जाता है, इसलिए तुम निष्काम कर्मयोगी बनो. (फल की आसक्ति से असफलता का भय होता है, जिसके कारण कर्म अच्छी तरह नहीं हो पाता है.) निष्काम कर्मयोग को ही कुशलता पूर्वक कर्म करना कहते हैं. (२.५०)

BG 2.50: One who prudently practices the science of work without attachment can get rid of both good and bad reactions in this life itself. Therefore, strive for Yog, which is the art of working skillfully (in proper consciousness).

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्य् अनामयम् ॥५१॥

ज्ञानी कर्मयोगीजन कर्मफल की आसक्ति को त्यागने के कारण जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं तथा परम शान्ति को प्राप्त करते हैं. (२.५१)

BG 2.51: The wise endowed with equanimity of intellect, abandon attachment to the fruits of actions, which bind one to the cycle of life and death. By working in such consciousness, they attain the state beyond all suffering.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर् व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥५२॥

जब तुम्हारी बुद्धि मोहरूपी दलदल को पार कर जायगी, उस समय तुम शास्त्र से सुने हुए तथा सुनने योग्य वस्तुओं से भी वैराग्य प्राप्त करोगे. (२.५२)

BG 2.52: When your intellect crosses the quagmire of delusion, you will then acquire indifference to what has been heard and what is yet to be heard (about enjoyments in this world and the next).

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस् तदा योगम् अवाप्स्यसि ॥५३॥

जब अनेक प्रकार के प्रवचनों को सुनने से विचलित हुई तुम्हारी बुद्धि परमात्मा के स्वरूप में निश्चल रूप से स्थिर हो जायगी, उस समय तुम समाधि में परमात्मा से युक्त हो जाओगे. (२.५३)

BG 2.53: When your intellect ceases to be allured by the fruitive sections of the Vedas and remains steadfast in divine consciousness, you will then attain the state of perfect Yog.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अर्जुन उवाच स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किम् आसीत व्रजेत किम् ॥५४॥

अर्जुन बोले— हे केशव, समाधि प्राप्त, स्थिर बुद्धि वाले अर्थात् स्थितप्रज्ञ मनुष्य का क्या लक्षण है? स्थिर बुद्धि वाला मनुष्य कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है. (२.५४)

BG 2.54: Arjun said : O Keshav, what is the disposition of one who is situated in divine consciousness? How does an enlightened person talk? How does he sit? How does he walk?

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्रीभगवानुवाच
प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येव् आत्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस् तदोच्यते ॥५५॥

श्रीभगवान बोले— हे पार्थ, जिस समय साधक अपने मन की सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्णरूप से त्याग देता है और आत्मा में आत्मानन्द से ही सन्तुष्ट रहता है, उस समय वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है. (२.५५)

BG 2.55: The Supreme Lord said: O Parth, when one discards all selfish desires and cravings of the senses that torment the mind, and becomes satisfied in the realization of the self, such a person is said to be transcendentally situated.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ५६ - दुखेष्वनुद्विग्नमनाः, सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः, स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

दुखों की प्राप्ति होने पर जिस के मन में उद्वेग (घबराहट या हलचल) नहीं होता, और सुखों की प्राप्ति होने पर जिस के मन में स्पृहा (खुशियाली) नहीं होती तथा जो राग, भय और क्रोध से सर्वथा रहित हो गया है, वह मननशील मनुष्य स्थिर बुद्धि कहा जाता है ।

One whose mind remains undisturbed amidst misery, who does not crave for pleasure, and who is free from attachment, fear, and anger, is called a sage of steady wisdom.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यः सर्वत्रानभिस्नेहस् तत् तत् प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

जिसे किसी भी वस्तु में आसक्ति (attachment) न हो, जो शुभ को प्राप्तकर प्रसन्न न हो और अशुभ से द्वेष न करे, उसकी बुद्धि स्थिर है. (२.५७), **और वही जीतेजी मोक्ष का आनन्द ले रहा है ।**

BG 2.57: One who remains unattached under all conditions, and is neither delighted by good fortune nor dejected by tribulation, he is a sage with perfect knowledge.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस् तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

जब साधक सब ओर से अपनी इन्द्रियों को विषयों से इस तरह हटा ले जैसे कछुआ (विपत्ति के समय अपनी रक्षा के लिए) अपने अंगों को समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर समझनी चाहिए. (२.५८)

BG 2.58: One who is able to withdraw the senses from their objects, just as a tortoise withdraws its limbs into its shell, is established in divine wisdom.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५९॥

इन्द्रियों को विषयों से हटाने वाले मनुष्य से विषयों की इच्छा तो हट भी जाती है, परन्तु विषयों की आसक्ति दूर नहीं होती. परमात्मा के स्वरूप को (तारतम्य विद्या द्वारा - By comparison or - एक दूसरे से तुलना करना) भलीभांति समझकर स्थितप्रज्ञ मनुष्य (विषयों की) आसक्ति से भी दूर हो जाता है. (२.५९) ।

मार्मिक बातः तारतम्य विद्याः गुरू की सेवा से गुरू की कृपा द्वारा प्राप्त की गई शिक्षा, उपदेष, संतो का संग, भगवन नाम समर्ण, कीर्तन, भजन, सत्य व्यहार और आचर्ण आदि द्वारा करते रहना जब तक मन स्थिर न हो जाये ।

BG 2.59: Aspirants may restrain the senses from their objects of enjoyment, but the taste for the sense objects remains. However, even this taste ceases for those who realizes the Supreme.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

हे कुन्तीनन्दन, संयम का प्रयत्न करते हुए ज्ञानी मनुष्य के मन को भी चंचल इन्द्रियां बलपूर्वक हर लेती हैं. (२.६०) इसलिये इन्द्रियों को बस में करने के लिये प्रयत्न करते रहे ।

BG 2.60: The senses are so strong and turbulent, O son of Kunti, that they can forcibly carry away the mind even of a person endowed with discrimination who practices self-control.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

इसलिए साधक अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके मुझ में श्रद्धापूर्वक ध्यान लगाकर बैठे; क्योंकि जिसकी इन्द्रियां वश में होती हैं, उसी की बुद्धि स्थिर होती है. (२.६१)

BG 2.61: They are established in perfect knowledge, who subdue their senses and keep their minds ever absorbed in Me.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ६२ - **ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।**
सङ्गात्सञ्जायते कामः, कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥

विषयों का चिन्तन करनेवाले मनुष्य की उन विषयों में आसक्ति पैदा हो जाती है । आसक्ति से कामना पैदा होती है । कामना में (बाधा लगने पर) क्रोध पैदा होता है ।

While contemplating constantly on the objects of the senses, one develops attachment to them. Attachment leads to desire, and from desire (that is unfulfilled), arises anger.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ६३ - **क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।**
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

क्रोध होने पर सम्मोह (मूढ़भाव) हो जाता है । सम्मोह से स्मृति भ्रष्ट हो जाती है । स्मृति भ्रष्ट होने पर बुद्धि (अर्थात् विवेक शक्ति) का नाश हो जाता है । बुद्धि का नाश होने पर मनुष्य का पतन हो जाता है । वह इन्सान कहलाने योग नहीं रह जाता ।

Anger leads to delusion (clouding of judgment) and confusion of memory, which results in bewilderment of memory. When memory is bewildered, the intellect gets destroyed; and when the intellect is destroyed, one is ruined and is in the state of lowest level that is considered worse than animals.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ६४ - **रागद्वेष वियुक्तैस्तु, विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।**
आत्मवश्यैर्विधेयत्मा, प्रसाद मभि गच्छति ॥

परन्तु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरण वाला साधक अपने वशमें की हुई, राग-द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में चिन्तन करता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है ।

But a self-controlled Yogi in practice, or a striver, while using objects with the senses, which are controlled and freed from attraction and aversion, he attains placidity of mind (i.e., cool, calm, and collected).

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिर् अस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

शान्ति से सभी दुःखों का अन्त हो जाता है और शान्तचित्त मनुष्य की बुद्धि शीघ्र ही स्थिर होकर परमात्मा से युक्त हो जाती है. (२.६५)

BG 2.65: By divine grace comes the peace in which all sorrows end, and the intellect of such a person of tranquil mind soon becomes firmly established in God.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

नास्ति बुद्धिर् अयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिर् अशान्तस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

अयुक्त (illicit, irrational, illogical, improper) मनुष्य के अन्तःकरण में न ईश्वर का ज्ञान होता है, न ईश्वर की भावना ही. भावनाहीन मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती और अशान्त मनुष्य को सुख कहां? (२.६६)

BG 2.66: But an undisciplined person, who has not controlled the mind and senses, can neither have a resolute intellect nor steady contemplation on God. For one who never unites the mind with God there is no peace; and how can one who lacks peace be happy?

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

इन्द्रियाणां हि चरतां यन् मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर् नावम् इवाम्भसि ॥६७॥

जैसे जल में तैरती नाव को तूफान उसे अपने लक्ष्य से दूर ढकेल देता है, वैसे ही इन्द्रिय-सुख मनुष्य की बुद्धि को गलत रास्ते की ओर ले जाता है. (२.६७)

BG 2.67: Just as a strong wind sweeps a boat off its chartered course on the water, even one of the senses on which the mind focuses can lead the intellect astray.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ६८ - तस्माद्यस्य महाबाहो, निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस, तस्य प्रजा प्रतिष्ठिता ॥

इसलिये हे महाबाहो ! जिस पुरुष की ईन्द्रयाँ इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार निग्रह की हुई है,उसी की बुद्धि स्थिर है ।

With the attainment of such placidity, all his sorrows and confusions come to an end; and the intellect of such a person of tranquil mind (ie., calm & collected), soon becomes, firmly stablished in God.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥

सब प्राणियों के लिए जो रात्रि है, उसमें संयमी मनुष्य जागा रहता है; और जब साधारण मनुष्य जागते हैं, तत्त्वदर्शी मुनि के लिए वह रात्रि के समान होता है. (२.६९)

BG 2.69: What all beings consider as day is the night of ignorance for the wise, and what all creatures see as night is the day for the introspective sage.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ७० - आपूर्यमाणम चल प्रतिष्ठं, समुद्रमापःप्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे, स शान्ति माप्नोति न कामकामी ॥

जैसे नाना नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परम शान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं ।

Just as the ocean remains undisturbed by the incessant flow of waters from rivers merging into it, likewise the sage who is unmoved despite the flow of desirable objects all around him, attains peace, **but not the person who strives to satisfy desires.**

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ७१ - विहाय कामान्यः सर्वान्पु, मांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः, स शान्ति मधिगच्छति ॥

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर ममतारहित, अहंकार रहित और स्पृहा रहित हुआ विचरता है, वही शान्ति को प्राप्त होता है, अर्थात् वह शान्ति को प्राप्त है ।

That person, who gives up all material desires and lives free from a sense of greed, proprietorship, and egoism, attains tranquillity (perfect peace, ultimate calmness).

विशेष बात - अप्राप्त वस्तु की इच्छा का नाम 'कामना' है, इसलिये स्थितप्रज्ञ महापुरुष सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग कर देता है । कामनाओं का त्याग कर देने पर भी शरीर के निर्वाह मात्र के लिये देश, काल, वस्तु व्यक्ति, पदार्थ आदि की जो अवश्यकता दीखती है, अर्थात् जीवन निर्वाह के लिये प्राप्त और अप्राप्त वस्तु आदि की जो जरूरत दीखती है, उसका नाम **स्पृहा** है । स्थितप्रज्ञ पुरुष इस **स्पृहा** का भी त्याग कर देता है । कारण की जिस के लिये शरीर मिला था और जिसकी अवश्यकता थी, उस तत्व की प्राप्ति हो गई । अब शरीर रहे चाहे न रहे, शरीर निर्वाह हो चाहे न हो - इस तरफ वह वेपरवाह रहता है । यही उसका निःस्पृह होता है । निःस्पृह होने का अर्थ यह नहीं है कि वह निर्वाह की वस्तुओं का सेवन करता ही नहीं । फर्क इतना ही है कि अब उसे वस्तुओं को मिलने या न मिलने की कोई परवाह ही नहीं है ।

Important Point – An earnest wish for something is, 'Kamna' (desire) while an earnest wish for acquiring or preserving necessities of life is called 'Spraha' (thirst). **A man of steadfast wisdom** lives devoid of longings and desires and has no thirst for acquiring or preserving even the necessities of life, as he has attained the supreme bliss for which the human body was bestowed upon him. So, he becomes free from all cares and does not mind even if his body lives or dies.
In this verse as well as in the 55th verse of this chapter, emphasis has been laid on renunciation of desires because in the Discipline of Disinterested Action, without abandoning these, no striver can possess **steadfast** (determined) **wisdom** (Gyan or good understanding).

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्लोक ७२ - **यषा ब्राह्मी स्थिति पार्थ, नैनां प्राप्य विमुह्यति ।**
स्थित्वा स्यामन्त कालेऽपि, ब्रह्मनिर्वाणं मृच्छति ॥

हे अर्जुन! यह ब्रह्मको प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है, इस को प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकाल में भी इस ब्राह्मी स्थिति में स्थित हो कर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है ।

O Parth, such is the state of an enlightened soul that having attained it, one is never again deluded. Being established in this consciousness even at the hour of death, one is liberated from the cycle of life and death and reaches the Supreme Abode of God.

परिशिष्ट भाव - निर्मम और निरहंकार होने से साधक का असत्-विभाग से सम्बन्ध-बिच्छेद हो जाता है और सत्-विभाग में अर्थात् ब्रह्म में अपनी स्वतः स्वभाविक स्थिति का अनुभव हो जाता है जिस को **ब्राह्मी** स्थिति कहते हैं । इस ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त होने पर शरीर का कोई मालिक नहीं रहता अर्थात् शरीर को मैं-मेरा कहने वाला कोई नहीं रहता, व्यक्तित्व मिट जाता है । तात्पर्य यह हुआ की हमारी स्थिति अहंकार के आश्रित नहीं है । अहंकार के मिटने पर भी हमारी स्थिति रहती है, जो ब्राह्मी स्थिति कहलाती है । एक बार इस ब्राह्मी स्थिति (**नित्ययोग**) का अनुभव होने पर फिर कभी मोह नहीं होता (गीता ४-३५) । अगर अन्तकाल में मनुष्य निर्मम-निरहंकार हो कर ब्राह्मी स्थिति का अनुभव कर ले तो उस को तत्काल निर्वाण ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है ।

Important Point – The striver devoid of the sense of mine and egoism gets dissociated from the material world called as 'Asatt-division' and realises that his natural abode is in Brahm i.e., Satt division. This abidance is known as "**Brahmi Sthiti**." Having attained this state, no owner of this body remains i.e., there is none

who assumes this body as 'I' or 'mine' and individuality is wiped out. It means that our reality is not dependent on egoism. Even rid of egoism, ever Reality stands which is called Brahmi Sthiti or 'Abidance in Brahm.' Once this Brahmi Sthiti (eternal union) is realised, then a man never gets deluded (Gita 4/35). If even at the time of death, being free from the sense of mineness and egoism, he realises this Brahmi Sthiti (State of Godhood), he remains brahmic bliss (identification with the absolute state) immediately.

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

गीता दर्पण का तात्पर्य :-

अपने विवेक को महत्व देना और अपने कर्तव्य का पालन करना - इन दोनो उपायों में से किसी भी एक उपाय को मनुष्य दृढ़ता से काम में लाये तो शोक-चिन्ता मिट जाते हैं। जितने शरीर दीखते हैं, वे सभी नष्ट होने वाले हैं, मरने वाले हैं, पर उन में रहने वाला कभी भी मरता नहीं। जैसे शरीर बाल्यावस्था को छोड़ कर युवावस्था को और युवावस्था को छोड़ के वृद्धावस्था को धारण कर लेता है, ऐसे ही शरीर में रहने वाली आत्मा एक शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर को धारण कर लेती है। मनुष्य जैसे पुराने वस्त्रों को छोड़ कर नये वस्त्रों को पहन लेता है, ऐसे ही शरीर में रहने वाली आत्मा शरीररूपी, एक चोले को छोड़ कर दूसरा चोला पहन लेता है।

जितनी अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती हैं, वे पहले नहीं थीं और पीछे भी नहीं रहेंगी तथा बीच में भी उन से प्रतिक्षण वियोग हो रहा है। तात्पर्य है कि वे परिस्थितियाँ आने-जाने वाली हैं, सदा रहनेवाली नहीं हैं। इस प्रकार स्पष्ट विवेक हो जाए तो हलचल, शोक-चिन्ता नहीं रह सकती।

शास्त्र की आज्ञा के अनुसार जो कर्तव्य कर्म प्राप्त हो जाय, उस का पालन, कार्य की पूर्ति-अपूर्ति में सम (निर्विकार) रह कर किया जाय तो भी हलचल नहीं रह सकती।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

Gita Essence in English – Chapter 2

Giving importance to one's conscience and performing one's duty - if a person uses any of these two measures with firmness, then grief and anxiety disappear.

All the bodies that are visible are going to be destroyed, are going to die, but the soul that lives in them never dies as it is immortal. Like the body that leaves childhood state and enters the adulthood, and then from adulthood to old age, likewise the soul leaves one body and enters the new one.

All the favorable and adverse conditions that come, they were not there before and will not be there afterwards. Furthermore, they are continuously changing at the present time.

ॐतत्सदिति श्रीमद्भगवतगीतासूपरिष्सु ब्रह्मविद्यां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम द्वितीयोऽध्याय ॥२॥